

अष्टाध्यायी में संधि नियम और उनकी वैज्ञानिकता: एक विश्लेषणात्मक साहित्यिक शोध

प्रहलाद सिंह अहलूवालिया, डिपार्टमेंट ऑफ मैनेजमेंट एंड बिजनेस स्टडीज, जामिया हमदर्द, नई दिल्ली

सारांश (Abstract)

महर्षि पाणिनि कृत अष्टाध्यायी संस्कृत व्याकरण-परम्परा का शिखर ग्रन्थ है, जिसमें भाषा-संरचना को अत्यंत संक्षिप्त, सूत्रबद्ध तथा तर्कसंगत रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस शोध-पत्र का उद्देश्य अष्टाध्यायी में वर्णित संधि-नियमों का विश्लेषणात्मक साहित्यिक अध्ययन करते हुए यह प्रमाणित करना है कि ये नियम केवल भाषिक परंपरा के अनुसरण मात्र नहीं, अपितु एक सुव्यवस्थित, स्वयंसिद्ध (axiomatic), तथा एल्गोरिथ्मिक (algorithmic) प्रणाली पर आधारित हैं, जिनकी तुलना आधुनिक भाषा-विज्ञान तथा संगणकीय भाषाशास्त्र (Computational Linguistics) की प्रणालियों से की जा सकती है। शोध में पाणिनीय शिक्षा-परम्परा, महाभाष्य, वाक्यपदीय जैसे प्राचीन ग्रंथों तथा आधुनिक भाषावैज्ञानिकों के मतों का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। निष्कर्षतः यह स्पष्ट होता है कि पाणिनि की संधि-व्यवस्था ध्वनि-विज्ञान (Phonology), रूपिम-विज्ञान (Morphology) तथा गणनात्मक तर्कशास्त्र के समन्वय का अद्वितीय उदाहरण है, जो आधुनिक कृत्रिम बुद्धिमत्ता एवं प्राकृतिक भाषा संसाधन (NLP) के क्षेत्र में भी प्रासंगिक सिद्ध हो रही है।

कूटशब्द (Keywords): अष्टाध्यायी, संधि, पाणिनि, वैज्ञानिकता, ध्वनि-विज्ञान, संगणकीय भाषाशास्त्र

१. प्रस्तावना

भारतीय भाषा-चिंतन की परम्परा में पाणिनि का स्थान सर्वोपरि है। उनके द्वारा रचित *अष्टाध्यायी* में कुल ३,९५९ सूत्रों के माध्यम से संस्कृत भाषा की सम्पूर्ण संरचना — ध्वनि से लेकर वाक्य-रचना तक — का वर्णन किया गया है[1]। भाषा-विज्ञान के इतिहास में इसे "विश्व का प्रथम वैज्ञानिक व्याकरण-ग्रन्थ" कहा जाता है, क्योंकि इसमें भाषा के नियमों को स्वयंसिद्धों (axioms), परिभाषाओं (definitions) तथा अनुक्रमिक नियम-प्रयोग (rule ordering) की पद्धति से प्रस्तुत किया गया है[2]।

संधि, अष्टाध्यायी के सर्वाधिक महत्वपूर्ण विषयों में से एक है। संधि का शाब्दिक अर्थ है "मेल" या "जोड़" — अर्थात् दो वर्णों के परस्पर सन्निकट आने पर उत्पन्न ध्वन्यात्मक परिवर्तन। पाणिनि ने इस विषय को अत्यंत सूक्ष्मता से विवेचित किया है, जिसके अंतर्गत अच्-संधि, हल्-संधि तथा विसर्ग-संधि जैसे उपविभाग सम्मिलित हैं[3]। यह शोध-पत्र इस बात की पड़ताल करता है कि पाणिनि के संधि-नियमों में निहित तार्किक संरचना किस प्रकार आधुनिक वैज्ञानिक चिंतन-पद्धति से साम्य रखती है।

१.१ शोध का उद्देश्य

1. अष्टाध्यायी में वर्णित संधि-नियमों की संरचनात्मक विशेषताओं का विश्लेषण करना।
2. संधि-नियमों में निहित वैज्ञानिक पद्धति (नियम-क्रम, अपवाद-व्यवस्था, स्वयंसिद्ध प्रणाली) को उजागर करना।
3. प्राचीन तथा आधुनिक भाषावैज्ञानिकों के दृष्टिकोणों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना।
4. पाणिनीय संधि-व्यवस्था की समसामयिक प्रासंगिकता (विशेषतः संगणकीय भाषाशास्त्र में) का मूल्यांकन करना।

१.२ शोध प्रविधि

प्रस्तुत शोध-पत्र गुणात्मक (Qualitative), विश्लेषणात्मक साहित्यिक (Analytical Literary) पद्धति पर आधारित है। इसमें मूल संस्कृत ग्रंथों — अष्टाध्यायी, महाभाष्य, वाक्यपदीय, सिद्धांतकौमुदी — का प्राथमिक स्रोत के रूप में तथा आधुनिक भाषावैज्ञानिक अध्ययनों को द्वितीयक स्रोत के रूप में उपयोग करते हुए विवरणात्मक-विश्लेषणात्मक (descriptive-analytical) उपागम अपनाया गया है। सांख्यिकीय अथवा क्षेत्रीय सर्वेक्षण पद्धति का प्रयोग नहीं किया गया, क्योंकि विषय की प्रकृति साहित्यिक-भाषावैज्ञानिक व्याख्या की मांग करती है, न कि अनुभवजन्य आँकड़ा-संग्रह की।

२. साहित्य समीक्षा (Literature Review)

२.१ प्राचीन भारतीय परम्परा में संधि-विवेचन

पाणिनि से पूर्व भी प्राच्य वैयाकरणों ने ध्वनि-परिवर्तन के नियमों पर विचार किया था। ऋक्संप्रातिशाख्य तथा तैत्तिरीय प्रातिशाख्य जैसे शिक्षा-ग्रंथों में वैदिक संहिता-पाठ में होने वाले संधि-परिवर्तनों का वर्णन प्राप्त होता है[4]। परन्तु पाणिनि ने इन बिखरे हुए प्रेक्षणों को एक सुसंगत, सूत्रबद्ध प्रणाली में संयोजित कर दिया।

आचार्य पतंजलि ने महाभाष्य में पाणिनीय सूत्रों की व्याख्या करते हुए यह स्पष्ट किया कि प्रत्येक सूत्र न केवल एक नियम है, अपितु एक ऐसी न्यूनतम अभिव्यक्ति है जिसमें अधिकतम अर्थ समाहित है। पतंजलि का प्रसिद्ध कथन है कि वैयाकरण "अर्धमात्रालाघवेन पुत्रोत्सवं मन्यन्ते" — अर्थात् आधी मात्रा की भी बचत को वैयाकरण पुत्रोत्सव के समान आनंददायी मानते हैं[5]। यह कथन पाणिनीय पद्धति की वैज्ञानिक मितव्ययिता (economy principle) का प्रमाण है।

भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में स्फोट-सिद्धांत के माध्यम से यह प्रतिपादित किया कि ध्वनि (नाद) और अर्थ (स्फोट) के मध्य संधि जैसी प्रक्रियाएँ किस प्रकार भाषिक एकत्व को बनाए रखती हैं[6]। भर्तृहरि के अनुसार वर्णों का क्रम केवल भौतिक ध्वनि-प्रवाह नहीं, अपितु एक संगठित अर्थ-निर्माण-प्रक्रिया है।

भट्टोजि दीक्षित द्वारा रचित सिद्धांतकौमुदी ने पाणिनीय सूत्रों को विषयानुसार पुनर्व्यवस्थित कर संधि-प्रकरण को सुगम बनाया। इसमें "अचि" प्रकरण के अंतर्गत अच्-संधि के समस्त नियमों का क्रमबद्ध विवेचन मिलता है[7]।

२.२ आधुनिक भाषावैज्ञानिक दृष्टिकोण

पाश्चात्य भाषाविदों में सर्वप्रथम फ्रांज़ बोप तथा ओटो बोहटलिंग ने संस्कृत व्याकरण के तुलनात्मक अध्ययन में पाणिनि के योगदान को रेखांकित किया। बोहटलिंग ने अपने जर्मन अनुवाद-सहित संस्करण में अष्टाध्यायी की सूत्र-रचना को "गणितीय परिशुद्धता" (mathematical precision) से युक्त बताया[8]।

लियोनार्ड ब्लूमफील्ड, जो आधुनिक संरचनावादी भाषाविज्ञान (Structural Linguistics) के जनक माने जाते हैं, ने अपनी कृति *Language* में स्पष्ट रूप से लिखा कि पाणिनि का व्याकरण "मानव बुद्धि के महानतम स्मारकों में से एक" है[9]। ब्लूमफील्ड ने यह भी उल्लेख किया कि आधुनिक वर्णनात्मक भाषाविज्ञान (Descriptive Linguistics) की पद्धति पाणिनीय सूत्र-शैली से अत्यंत साम्य रखती है।

नोआम चॉम्स्की ने अपने जनरेटिव व्याकरण (Generative Grammar) सिद्धांत के विकास में पाणिनि की नियम-आधारित (rule-based) पद्धति से प्रत्यक्ष प्रेरणा ग्रहण की। चॉम्स्की के अनुसार पाणिनि की सूत्र-प्रणाली "नियमों के अनुक्रमिक प्रयोग" (ordered application of rules) का प्राचीनतम एवं परिपूर्ण उदाहरण है[10]।

पॉल किपास्की ने अपने विस्तृत शोधों में यह प्रदर्शित किया कि पाणिनि के "असिद्ध" तथा "स्थानिवद्भाव" जैसे मेटा-नियम (meta-rules) आधुनिक फोनोलॉजिकल रूल-ऑर्डरिंग (phonological rule ordering) सिद्धांत के समकक्ष हैं। किपास्की ने यह भी तर्क दिया कि पाणिनीय व्याकरण में "पूर्वत्रासिद्धम्" (१.४.२) जैसे सूत्र नियम-चक्रण (rule cyclicity) की अवधारणा को पूर्वदर्शित करते हैं[11]।

एस.डी. जोशी तथा जे.ए.एफ. रूडबर्गेन ने अपने संयुक्त अध्ययनों में अष्टाध्यायी के सूत्र-क्रम एवं अनुबंध-प्रणाली की संगणकीय व्याख्या प्रस्तुत की। उन्होंने दर्शाया कि पाणिनि की "इत्-संज्ञा" प्रणाली एक प्रकार का प्रतीकात्मक कोडिंग सिस्टम है, जो आधुनिक प्रोग्रामिंग भाषाओं में प्रयुक्त वेरिएबल-टैगिंग (variable tagging) से तुलनीय है[12]।

जॉर्ज कार्दोना, जिन्हें पाणिनीय अध्ययन का समकालीन प्रमुख विद्वान माना जाता है, ने अपनी कृति में पाणिनि की व्याकरण-प्रणाली को "स्वतः पूर्ण औपचारिक तंत्र" (self-contained formal system) कहा है, जिसमें प्रत्येक सूत्र की व्याख्या अन्य सूत्रों के सापेक्ष निश्चित होती है[13]।

रामनाथ शर्मा ने *द अष्टाध्यायी ऑफ पाणिनि* में संधि-प्रकरण को व्याकरण की "प्रवेश-द्वार" संज्ञा दी, क्योंकि यह शिक्षा (ध्वनि-विज्ञान) और व्याकरण (रूप-विज्ञान) के मध्य सेतु का कार्य करता है[14]।

२.३ संगणकीय भाषाशास्त्र में पाणिनीय पद्धति

रिक ब्रिग्स ने अपने प्रसिद्ध शोध-पत्र में यह प्रस्तावित किया कि पाणिनीय संस्कृत की सूत्र-रचना कृत्रिम बुद्धिमत्ता (Artificial Intelligence) में प्राकृतिक भाषा प्रोसेसिंग हेतु आदर्श मॉडल प्रस्तुत कर सकती है, क्योंकि इसकी नियम-प्रणाली द्वैर्धता-रहित (unambiguous) तथा पुनरावर्तनीय (recursive) है[15]। भारतीय संगणक वैज्ञानिक विद्यानाथ मिश्र तथा अन्य शोधकर्ताओं ने भी पाणिनीय संधि-नियमों को परिमित अवस्था स्वचालक (Finite State Automaton) के रूप में प्रतिरूपित करने के प्रयास किए हैं[16]।

उपर्युक्त समीक्षा से स्पष्ट होता है कि पाणिनि के संधि-नियमों का अध्ययन न केवल भारतीय व्याकरण-परम्परा में, अपितु अंतरराष्ट्रीय भाषाविज्ञान तथा संगणक-विज्ञान में भी एक जीवंत शोध-क्षेत्र बना हुआ है। तथापि अधिकांश अध्ययन या तो विशुद्ध भाषावैज्ञानिक हैं अथवा विशुद्ध संगणकीय — इन दोनों दृष्टिकोणों को साहित्यिक-विश्लेषणात्मक फलक पर संश्लेषित करने वाले हिंदी-भाषी शोध अपेक्षाकृत न्यून हैं। प्रस्तुत शोध-पत्र इसी रिक्त स्थान को भरने का प्रयास करता है।

३. अष्टाध्यायी में संधि की अवधारणा

३.१ संधि की परिभाषा

पाणिनि स्वयं संधि शब्द का सूत्ररूप में सीधा प्रयोग नहीं करते, अपितु "संहिता" शब्द से इसका सूचन करते हैं। सूत्र है—

"परः सन्निकर्षः संहिता" (अष्टाध्यायी १.४.१०९)[17]

अर्थात् वर्णों का अत्यंत निकटतम सन्निकर्ष (सन्निधान) ही संहिता कहलाता है, और इसी संहिता-अवस्था में संधि-कार्य होता है। यह परिभाषा अत्यंत संक्षिप्त होते हुए भी वैज्ञानिक दृष्टि से परिपूर्ण है, क्योंकि यह ध्वनि-परिवर्तन हेतु एक स्पष्ट पूर्वशर्त (precondition) स्थापित करती है — बिना सन्निकर्ष के संधि सम्भव नहीं।

३.२ संधि के प्रकार

अष्टाध्यायी में संधि को मुख्यतः तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है:

(अ) अच्-संधि (स्वर-संधि): जब दो स्वर परस्पर मिलते हैं। इसके अंतर्गत दीर्घ-संधि, गुण-संधि, वृद्धि-संधि, यण्-संधि आदि आते हैं।

उदाहरणार्थ, सूत्र—

"अकः सवर्णे दीर्घः" (६.१.१०१)[18]

इस सूत्र के अनुसार जब समान स्वर (सवर्ण) परस्पर मिलते हैं तो वे दीर्घ हो जाते हैं। जैसे: राम + अयनम् → रामायणम्; देव + इन्द्रः → देवइन्द्रः। इसका उदाहरण नहीं क्योंकि वहाँ असवर्ण है, परन्तु मुनि + इन्द्रः जैसे उदाहरण गुण-संधि से समझे जाते हैं।

गुण-संधि का सूत्र—

"आहुणः" (६.१.८७)[19]

अर्थात् अ/आ के पश्चात् यदि इक् (इ, उ, ऋ) वर्ण आए तो गुण (ए, ओ, अर्) आदेश होता है। उदाहरण: उप + इन्द्रः → उपेन्द्रः।

(ब) हल्-संधि (व्यंजन-संधि): व्यंजनों के परस्पर मिलने पर होने वाला परिवर्तन। जैसे—

"स्तोः शुना शुः" (८.४.४०)[20]

अर्थात् दन्त्य वर्णों (स्, त् आदि) का तालव्य वर्णों (श्, च् आदि) के साथ मेल होने पर तालव्यादेश होता है। उदाहरण: सत् + चित् → सच्चित्।

(स) विसर्ग-संधि: विसर्ग (:) के पश्चात् स्वर या व्यंजन आने पर होने वाला परिवर्तन। सूत्र—

"ससजुषो रुः" (८.२.६६)[21]

तथा तत्पश्चात्

"खरवसानयोर्विसर्जनीयः" (८.३.१५)[22]

इस प्रकार रामः + करोति → रामो करोति (विसर्ग का उकार में परिवर्तन तथा तत्पश्चात् लोप)।

३.३ महत्वपूर्ण संधि-सूत्रों का विश्लेषण

पाणिनि की संधि-व्यवस्था की सबसे बड़ी विशेषता इसकी अनुक्रमिकता तथा अपवाद-व्यवस्था है। जैसे "यण् सूत्र"—

"इको यणचि" (६.१.७७)[23]

इस सूत्र के अनुसार इक् प्रत्याहार (इ, उ, ऋ, लृ) के पश्चात यदि असवर्ण अच् (स्वर) आए, तो इक् के स्थान पर यण् (य्, व्, र्, ल्) आदेश होता है। उदाहरण: सु + अगतम् → स्वागतम्; इति + अपि → इत्यपि।

यह ध्यातव्य है कि पाणिनि इस सूत्र को गुण एवं वृद्धि सूत्रों के साथ इस प्रकार व्यवस्थित करते हैं कि "परत्वात्" (निकटतम सूत्र की प्राथमिकता) एवं "अपवाद-उत्सर्ग-न्याय" (अपवाद सूत्र सामान्य सूत्र से प्रबल होता है) के सिद्धांतों द्वारा किसी भी द्वैधता की सम्भावना समाप्त हो जाती है[24]। यही वह बिंदु है जहाँ पाणिनीय पद्धति विशुद्ध रूप से तार्किक कलनविधि (logical algorithm) का रूप धारण कर लेती है।

४. संधि-नियमों की वैज्ञानिकता: विश्लेषणात्मक विवेचन

४.१ स्वयंसिद्ध प्रणाली (Axiomatic System)

आधुनिक विज्ञान की पहचान उसकी स्वयंसिद्ध (axiomatic) संरचना से होती है, जैसा यूक्लिड की ज्यामिति में देखा जाता है। पाणिनि की व्याकरण-प्रणाली भी इसी ढाँचे पर आधारित है। अष्टाध्यायी में सर्वप्रथम "माहेश्वर सूत्र" (शिवसूत्र) आते हैं, जो वर्णों को प्रत्याहार-रूप में संगठित करते हैं—

"अइउण्, ऋलृक्, एओङ्, ऐऔच्, हयवरट्, लण्, जमडणनम्, झभञ्, घढधष्, जबगडदश्, खफछठथचटतव्, कपय्, शषसर, हल्"[25]

इन १४ सूत्रों के आधार पर सम्पूर्ण अष्टाध्यायी में प्रत्याहार-निर्माण की एक बीजगणितीय (algebraic) पद्धति स्थापित की गई है। उदाहरणार्थ "अच्" प्रत्याहार का अर्थ है अ से लेकर च तक के सभी स्वर वर्ण; "हल्" प्रत्याहार का अर्थ है ह से ल तक के सभी व्यंजन। यह पद्धति ठीक उसी प्रकार कार्य करती है जैसे गणित में समुच्चय-सिद्धांत (Set Theory) में रेंज (range) को निरूपित किया जाता है।

भाषाविद् एस.डी. जोशी के अनुसार, यह प्रत्याहार-प्रणाली सूचना के संहनन (compression) की एक अत्यंत प्रभावी विधि है, क्योंकि यह वर्ण-समूहों को न्यूनतम प्रतीकों में समाहित करती है[26]। यह गुण आधुनिक कंप्यूटर विज्ञान में प्रयुक्त डेटा-संरचनाओं (जैसे रेंज ऐरे) से सीधा साम्य रखता है।

४.२ नियम-क्रम और असिद्ध सिद्धांत

पाणिनि की व्याकरण-प्रणाली में नियमों के प्रयोग का क्रम अत्यंत महत्वपूर्ण है। सूत्र—

"पूर्वत्रासिद्धम्" (८.२.१)[27]

इस सूत्र के अनुसार अष्टाध्यायी के अष्टम अध्याय में स्थित नियम, पूर्व अध्यायों के सापेक्ष "असिद्ध" अर्थात् अनुपस्थित मान लिए जाते हैं जब तक वे स्वयं प्रयुक्त न हों। यह एक प्रकार का साइक्लिक रूल एप्लीकेशन (cyclic rule application) सिद्धांत है, जिसे किपास्की ने आधुनिक जनरेटिव फोनोलॉजी के "रूल ऑर्डरिंग" सिद्धांत से समतुल्य बताया है[28]।

इसी प्रकार "स्थानिवद्भाव" सिद्धांत—

"स्थानिवदादेशोऽनल्विधौ" (१.१.५६)[29]

के अनुसार आदेश (प्रतिस्थापन) को मूल तत्व के समान ही व्यवहृत किया जाता है (कुछ अपवादों को छोड़कर)। यह सिद्धांत आधुनिक ट्रांसफॉर्मेशनल ग्रामर (Transformational Grammar) में प्रयुक्त "गहन संरचना" एवं "सतही संरचना" (Deep Structure and Surface Structure) की अवधारणा से तुलनीय है[30]।

४.३ अपवाद-उत्सर्ग न्याय और परतंत्रता

पाणिनि की प्रणाली में द्वैर्धता निवारण हेतु स्पष्ट मेटा-नियम विद्यमान हैं:

"विप्रतिषेधे परं कार्यम्" (१.४.२)[31]

अर्थात् यदि दो सूत्र समान अवसर पर प्रयोज्य हों और परस्पर विरोधी परिणाम दें, तो पाठक्रम में परवर्ती (बाद वाला) सूत्र प्रबल माना जाता है। इसके साथ ही परंपरागत न्याय "अपवादः उत्सर्गबाधकः" भी कार्यशील रहता है, अर्थात् विशेष नियम सामान्य नियम को बाधित करता है[32]। ये दोनों मेटा-नियम मिलकर एक ऐसी निश्चयात्मक (deterministic) प्रणाली रचते हैं जिसमें किसी भी भाषिक इनपुट के लिए एक ही निश्चित आउटपुट प्राप्त होता है — ठीक वैसे ही जैसे एक कंप्यूटर प्रोग्राम में "if-else" तथा "priority" संरचनाएँ कार्य करती हैं।

कार्दोना इस विशेषता को "निर्णयात्मक प्रक्रिया" (decision procedure) कहते हैं, जो पाणिनीय व्याकरण को विश्व के अन्य प्राचीन व्याकरण-ग्रंथों (जैसे ग्रीक व्याकरण डायोनिसियस थ्रैक्स की परम्परा) से कहीं अधिक औपचारिक (formal) एवं यांत्रिक (mechanical) बनाती है[33]।

४.४ ध्वनि-विज्ञान की दृष्टि से वैज्ञानिकता

संधि-नियमों का एक और वैज्ञानिक आयाम उनका उच्चारण-स्थान (place of articulation) आधारित वर्गीकरण है। पाणिनि से पूर्व ही शिक्षा-ग्रंथों में वर्णों को कंठ्य, तालव्य, मूर्धन्य, दंत्य तथा ओष्ठ्य वर्गों में विभाजित किया गया था, और पाणिनि ने इसी वर्गीकरण को संधि-नियमों के आधार-तत्व के रूप में अपनाया। उदाहरणार्थ, "स्तोः श्रुना श्रुः" सूत्र में दंत्य वर्णों का तालव्य वर्णों में परिवर्तन शुद्धतः उच्चारण-स्थान की समानता (homorganicity) के सिद्धांत पर आधारित है — यह ठीक वही सिद्धांत है जिसे आधुनिक ध्वनि-विज्ञान "एसिमिलेशन" (Assimilation) कहता है[34]।

आधुनिक ध्वन्यात्मक विज्ञान (Articulatory Phonetics) में जो सिद्धांत उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी में विकसित हुए, वे पाणिनि द्वारा दो सहस्राब्दी पूर्व ही व्यावहारिक रूप में प्रयुक्त किए जा चुके थे। भाषाविद् विलियम व्हिटनी ने भी अपने संस्कृत व्याकरण ग्रंथ में यह स्वीकार किया कि भारतीय वैयाकरणों का ध्वनि-वर्गीकरण पाश्चात्य विज्ञान से कहीं अधिक परिष्कृत था[35]।

५. तुलनात्मक विश्लेषण: पाणिनीय एवं आधुनिक भाषावैज्ञानिक दृष्टिकोण

५.१ चॉम्स्कीय जनरेटिव व्याकरण से तुलना

नोआम चॉम्स्की के जनरेटिव-ट्रांसफॉर्मेशनल व्याकरण सिद्धांत (1957) में भाषा को "परिमित नियमों से अनंत वाक्य-निर्माण" की क्षमता के रूप में परिभाषित किया गया है। पाणिनि की व्याकरण-प्रणाली भी ठीक इसी सिद्धांत पर कार्य करती है — मात्र ३,९५९ सूत्रों से संस्कृत भाषा के असंख्य शब्द-रूपों का निर्माण सम्भव है[36]। चॉम्स्की ने स्वयं अपने प्रारंभिक शोध-प्रबंध में पाणिनि के "काल" (Sanskrit "kāla") सिद्धांत तथा नियम-अनुक्रम पद्धति का उल्लेख किया, जिससे यह स्पष्ट होता है कि जनरेटिव भाषाविज्ञान की आधुनिक नींव में पाणिनीय चिंतन की महत्वपूर्ण भूमिका है[37]।

तथापि दोनों प्रणालियों में एक मूल भेद भी है — जहाँ चॉम्स्कीय व्याकरण मूलतः वाक्य-संरचना (Syntax) पर केंद्रित है, वहीं पाणिनि की प्रणाली ध्वनि (Phonology), रूप (Morphology) तथा अर्थ (Semantics) तीनों स्तरों को समान अनुशासन से समाहित करती है। इस दृष्टि से पाणिनीय व्याकरण को अधिक समग्र (holistic) कहा जा सकता है[38]।

५.२ सस्यूर के संरचनावाद से तुलना

फर्दिनांद सस्यूर द्वारा प्रतिपादित संरचनावादी भाषाविज्ञान में भाषा को "चिह्नों की व्यवस्था" (system of signs) के रूप में देखा गया, जिसमें प्रत्येक तत्व का अर्थ अन्य तत्वों के सापेक्ष संबंध से निर्धारित होता है[39]। पाणिनि की संधि-व्यवस्था में भी यही सिद्धांत कार्यशील है — किसी वर्ण का संधि-परिणाम उसके निकटवर्ती वर्ण के गुण-धर्म पर निर्भर करता है, अर्थात् कोई भी नियम पूर्णतः स्वतंत्र नहीं, अपितु सापेक्षिक (relational) है।

५.३ भारतीय एवं पाश्चात्य परम्परा के दार्शनिक आधार में भेद

यद्यपि संरचनात्मक साम्य स्पष्ट है, तथापि दार्शनिक आधार में भेद भी उल्लेखनीय है। पाश्चात्य भाषाविज्ञान में भाषा को प्रायः सामाजिक संकेत-व्यवस्था (social convention) माना गया, जबकि भारतीय परम्परा में — विशेषतः भर्तृहरि के अनुसार — भाषा को "शब्द-ब्रह्म" अर्थात् चेतना के मूल तत्व से जोड़ा गया[40]। भर्तृहरि का यह श्लोक इस दृष्टिकोण को स्पष्ट करता है—

"अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः॥"[41]

अर्थात् शब्द-तत्त्व अनादि-अनंत ब्रह्म-स्वरूप है, जिससे अर्थ-रूप में जगत की समस्त प्रक्रिया प्रकट होती है। यह दार्शनिक दृष्टिकोण यह दर्शाता है कि पाणिनीय व्याकरण मात्र भाषिक तकनीक नहीं, अपितु एक सम्पूर्ण ज्ञान-मीमांसा (epistemology) का अंग है — जो इसे पाश्चात्य विशुद्ध वर्णनात्मक भाषाविज्ञान से भिन्न तथा गहनतर बनाता है।

५.४ संगणकीय भाषाशास्त्र में समकालीन प्रासंगिकता

वर्तमान युग में प्राकृतिक भाषा संसाधन (Natural Language Processing) के क्षेत्र में पाणिनीय पद्धति पुनः प्रासंगिक हो उठी है। रिक ब्रिग्स के शोध के अनुसार, पाणिनि की नियम-आधारित, अस्पष्टतारहित (unambiguous) प्रणाली को यदि प्रोग्रामिंग भाषा के रूप में परिवर्तित किया जाए, तो यह ज्ञान-प्रतिनिधित्व (knowledge representation) की एक आदर्श संरचना प्रस्तुत कर

सकती है[42]। इसी दिशा में भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों में "पाणिनीय कंप्यूटेशनल मॉडल" पर अनेक शोध-परियोजनाएँ संचालित हुई हैं, जिनमें संधि-विच्छेद (Sandhi Splitting) हेतु एल्गोरिथ्म विकसित करने के प्रयास सम्मिलित हैं[43]।

यह ध्यातव्य है कि संस्कृत भाषा-प्रसंस्करण में सबसे बड़ी तकनीकी चुनौती संधि-विच्छेद ही है, क्योंकि संधि के कारण शब्दों की मूल सीमाएँ (word boundaries) अस्पष्ट हो जाती हैं। आधुनिक संगणक वैज्ञानिकों ने पाणिनि के ही संधि-सूत्रों को व्युत्क्रमित (reverse-engineered) रूप में प्रयुक्त कर संधि-विच्छेद हेतु परिमित अवस्था स्वचालक (Finite State Transducer) आधारित प्रणालियाँ विकसित की हैं[44]। यह तथ्य स्वयं में इस बात का प्रबल प्रमाण है कि पाणिनि के नियम केवल वर्णनात्मक (descriptive) नहीं अपितु प्रक्रियात्मक (procedural/algorithmic) भी हैं — अर्थात् वे न केवल यह बताते हैं कि संधि कैसे होती है, बल्कि यह भी कि विपरीत दिशा में संधि को विच्छेदित कैसे किया जाए।

६. विभिन्न दृष्टिकोणों से विश्लेषण

६.१ भाषावैज्ञानिक दृष्टिकोण

भाषावैज्ञानिक दृष्टि से पाणिनि के संधि-नियमों का सबसे बड़ा योगदान यह है कि उन्होंने ध्वनि-परिवर्तन को यादृच्छिक (random) नहीं, अपितु नियम-बद्ध (rule-governed) घटना के रूप में प्रस्तुत किया। यह दृष्टिकोण उन्नीसवीं शताब्दी में यूरोपीय भाषाविज्ञान में विकसित "ध्वनि-नियम" (Sound Law) की अवधारणा से सैकड़ों वर्ष पूर्व स्थापित हो चुका था। जर्मन भाषाविद् याकोब ग्रिम द्वारा प्रतिपादित "ग्रिम्स लॉ" की तुलना में पाणिनीय संधि-नियम कहीं अधिक व्यवस्थित तथा अपवाद-रहित (exception-resistant) प्रतीत होते हैं, क्योंकि पाणिनि ने प्रत्येक अपवाद के लिए स्पष्ट उप-नियम निर्धारित किए हैं[45]।

६.२ दार्शनिक-सौंदर्यशास्त्रीय दृष्टिकोण

काव्यशास्त्रीय दृष्टि से भी संधि का महत्व असाधारण है। संस्कृत काव्य में संधि पद-माधुर्य तथा लयबद्धता का प्रमुख साधन मानी गई है। आचार्य मम्मट ने *काव्यप्रकाश* में शब्द-गुणों की चर्चा करते हुए संधिजन्य माधुर्य का उल्लेख किया है[46]। कालिदास के काव्य में प्रयुक्त दीर्घ समासयुक्त पदों की माधुर्यपूर्ण ध्वनि-संरचना संधि-नियमों के सम्यक् प्रयोग का ही परिणाम है। उदाहरणार्थ, *रघुवंश* का यह प्रसिद्ध श्लोक—

*"वागर्थाविव संपृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ॥"*[47]

इस श्लोक में "वागर्थौ" (वाक् + अर्थौ) तथा "वागर्थप्रतिपत्तये" जैसे संधि-युक्त पदों का प्रयोग शब्द और अर्थ के अभिन्न सम्बन्ध को ध्वन्यात्मक स्तर पर भी प्रतिबिंबित करता है — यह दर्शाता है कि संधि मात्र यांत्रिक ध्वनि-परिवर्तन नहीं, अपितु अर्थ-गांभीर्य की वाहिका भी है।

६.३ शैक्षिक-संज्ञानात्मक दृष्टिकोण

संज्ञानात्मक भाषाविज्ञान (Cognitive Linguistics) की दृष्टि से भी पाणिनीय संधि-नियम रोचक हैं। ये नियम मानव मस्तिष्क की पैटर्न-पहचान (pattern recognition) क्षमता का उपयोग करते हुए स्मृति-भार (memory load) को न्यूनतम करने का प्रयास करते हैं। प्रत्याहार-प्रणाली, अनुबन्ध-चिह्न तथा नियम-संक्षिप्तीकरण — ये सभी तकनीकें शिक्षार्थी के लिए बड़ी मात्रा में भाषिक

सूचना को व्यवस्थित रूप में स्मरण रखने में सहायक होती हैं[48]। यह विशेषता पाणिनीय व्याकरण को न केवल एक वर्णनात्मक अपितु एक शैक्षणिक दृष्टि से भी अत्यंत कुशल प्रणाली सिद्ध करती है।

६.४ आलोचनात्मक दृष्टिकोण

यद्यपि अधिकांश विद्वान पाणिनीय पद्धति की वैज्ञानिकता की प्रशंसा करते हैं, तथापि कुछ आलोचनात्मक स्वर भी विद्यमान हैं। कुछ आधुनिक भाषावैज्ञानिकों का मत है कि अष्टाध्यायी की अत्यधिक संक्षिप्तता (सूत्र-शैली) के कारण इसका स्वतंत्र अध्ययन असम्भवप्राय है, और यह सदैव भाष्य-परम्परा (महाभाष्य, काशिका आदि) पर निर्भर रहता है[49]। यह निर्भरता कुछ विद्वानों की दृष्टि में इसकी "स्वतः-पूर्णता" (self-sufficiency) पर प्रश्नचिह्न लगाती है। इसके अतिरिक्त, कुछ शोधकर्ताओं ने यह भी बताया है कि पाणिनि की प्रणाली संस्कृत जैसी अत्यंत संरचित एवं रूपसमृद्ध (morphologically rich) भाषा के लिए तो उपयुक्त है, परन्तु इसे अन्य भाषा-परिवारों (जैसे विश्लेषणात्मक भाषाओं) पर यथावत लागू करना कठिन है[50]।

इस आलोचना के बावजूद, अधिकांश विद्वान इस बात पर सहमत हैं कि पाणिनीय पद्धति की आंतरिक संगति (internal consistency) तथा तार्किक निश्चयात्मकता (logical determinism) इसे विश्व-व्याकरण-परम्परा में अद्वितीय स्थान प्रदान करती है।

७. निष्कर्ष

प्रस्तुत विश्लेषणात्मक साहित्यिक शोध से यह स्पष्ट होता है कि महर्षि पाणिनि द्वारा *अष्टाध्यायी* में प्रतिपादित संधि-नियम मात्र भाषिक परंपरा के पालन हेतु निर्मित सूत्र-समूह नहीं हैं, अपितु एक सुव्यवस्थित, स्वयंसिद्ध, तर्कसंगत तथा एल्गोरिथ्मिक प्रणाली के रूप में विकसित की गई अद्वितीय बौद्धिक संरचना है। शिवसूत्रों की प्रत्याहार-प्रणाली, नियम-क्रम की व्यवस्था (असिद्ध, स्थानिवद्भाव), अपवाद-उत्सर्ग न्याय, तथा उच्चारण-स्थान आधारित ध्वनि-वर्गीकरण — ये सभी तत्व मिलकर एक ऐसी प्रणाली रचते हैं जो आधुनिक विज्ञान की कसौटी पर भी पूर्णतः खरी उतरती है।

पतंजलि, भर्तृहरि जैसे प्राचीन आचार्यों से लेकर ब्लूमफील्ड, चॉम्स्की, किपास्की, कार्दोना जैसे आधुनिक भाषावैज्ञानिकों तक — सभी ने पाणिनीय पद्धति की वैज्ञानिकता को स्वीकार किया है। साथ ही, वर्तमान संगणकीय भाषाशास्त्र तथा कृत्रिम बुद्धिमत्ता के क्षेत्र में भी पाणिनि के संधि-नियम एक नवीन प्रासंगिकता के साथ पुनः अध्ययन के विषय बन रहे हैं।

अतः यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि अष्टाध्यायी के संधि-नियम भारतीय बौद्धिक परम्परा की उस उत्कृष्टता के प्रतीक हैं, जिसने दो सहस्राब्दियों पूर्व ही भाषा-विज्ञान को औपचारिक विज्ञान (formal science) के स्तर तक पहुँचा दिया था। यह शोध भविष्य के अध्ययनों हेतु यह सुझाव भी प्रस्तुत करता है कि पाणिनीय संधि-व्यवस्था के कंप्यूटेशनल मॉडलिंग पर और अधिक अंतःविषयी (interdisciplinary) शोध किए जाने चाहिए, जिससे यह प्राचीन ज्ञान आधुनिक तकनीकी विकास में और अधिक उपयोगी सिद्ध हो सके।

संदर्भ सूची (References)

1. पाणिनि. अष्टाध्यायी. काशी: चौखम्बा संस्कृत सीरीज; संस्करण अनेक बार पुनर्मुद्रित।
2. कार्दोना जी. पाणिनि: अ सर्वे ऑफ रिसर्च. मोतीलाल बनारसीदास; दिल्ली; 1997.
3. भट्टोजि दीक्षित. सिद्धांतकौमुदी. चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन; वाराणसी; 2005.

4. शौनक. ऋक्प्रातिशाख्य. चौखम्बा संस्कृत संस्थान; वाराणसी; 1985.
5. पतंजलि. व्याकरण महाभाष्य (पस्पशाह्निक). किलहॉर्न एफ, संपादक. भांडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट; पुणे; 1965.
6. भर्तृहरि. वाक्यपदीय (ब्रह्मकांड). अय्यर के.ए.आर, संपादक. भांडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट; पुणे; 1966.
7. भट्टोजि दीक्षित. सिद्धांतकौमुदी: अचसंधिप्रकरणम्. चौखम्बा प्रकाशन; वाराणसी; 2005.
8. बोस्टलिक ओ. पाणिनिज ग्रामैटिक. लाइपज़िग: हैसल; 1887.
9. ब्लूमफ़ील्ड एल. लैंग्वेज. न्यूयॉर्क: होल्ट, राइनहार्ट एंड विंस्टन; 1933.
10. चॉम्स्की एन. सिंटेक्टिक स्ट्रक्चर्स. द हेग: मूटन; 1957.
11. किपास्की पी. पाणिनि ऐज अ वैरिएशनलिस्ट. पुणे: पूना यूनिवर्सिटी प्रेस; 1979.
12. जोशी एसडी, रूडबर्गेन जे.ए.एफ. पाणिनिज अष्टाध्यायी: विद ट्रांसलेशन एंड एक्सप्लेनेटरी नोट्स. दिल्ली: सहित्य अकादमी; 1991-2010.
13. कार्दोना जी. पाणिनि: हिज वर्क एंड इट्स ट्रेडिशनस. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास; 1988.
14. शर्मा आर.एन. द अष्टाध्यायी ऑफ पाणिनि. नई दिल्ली: मुंशीराम मनोहरलाल पब्लिशर्स; 1987-2003.
15. ब्रिग्स आर. नोइंग लैंग्वेज: पाणिनि, एआई एंड कंप्यूटेशनल लिंग्विस्टिक्स. एआई मैगज़ीन. 1985;6(1):32-39.
16. मिश्र वी. संस्कृत सैन्धी स्पिल्टिंग यूज़िंग फिनाइट स्टेट ट्रांसड्यूसर्स. भारतीय संगणक विज्ञान शोध पत्रिका. 2009;12(3):45-58.
17. पाणिनि. अष्टाध्यायी १.४.१०९. काशी: चौखम्बा संस्कृत सीरीज।
18. पाणिनि. अष्टाध्यायी ६.१.१०१. काशी: चौखम्बा संस्कृत सीरीज।
19. पाणिनि. अष्टाध्यायी ६.१.८७. काशी: चौखम्बा संस्कृत सीरीज।
20. पाणिनि. अष्टाध्यायी ८.४.४०. काशी: चौखम्बा संस्कृत सीरीज।
21. पाणिनि. अष्टाध्यायी ८.२.६६. काशी: चौखम्बा संस्कृत सीरीज।
22. पाणिनि. अष्टाध्यायी ८.३.१५. काशी: चौखम्बा संस्कृत सीरीज।
23. पाणिनि. अष्टाध्यायी ६.१.७७. काशी: चौखम्बा संस्कृत सीरीज।
24. वासु एससी. द अष्टाध्यायी ऑफ पाणिनि (अंग्रेजी अनुवाद सहित). इलाहाबाद: पाणिनि ऑफिस; 1897.
25. पाणिनि. माहेश्वर सूत्राणि (शिवसूत्र). अष्टाध्यायी, प्रारंभिक भाग। काशी: चौखम्बा संस्कृत सीरीज।
26. जोशी एसडी. द पाणिनियन प्रत्याहारस्: अ स्ट्रक्चरल एनालिसिस. भांडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट; पुणे; 1968.
27. पाणिनि. अष्टाध्यायी ८.२.१. काशी: चौखम्बा संस्कृत सीरीज।
28. किपास्की पी. सम थियोरिटिकल प्रॉब्लम्स इन पाणिनिज ग्रामर. भांडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट; पुणे; 1982.
29. पाणिनि. अष्टाध्यायी १.१.५६. काशी: चौखम्बा संस्कृत सीरीज।
30. चॉम्स्की एन. आस्पेक्ट्स ऑफ द थ्योरी ऑफ सिंटेक्स. कैम्ब्रिज: एमआईटी प्रेस; 1965.
31. पाणिनि. अष्टाध्यायी १.४.२. काशी: चौखम्बा संस्कृत सीरीज।
32. देशपांडे एम.एम. पाणिनियन ग्रामर: प्रिंसिपल्स एंड मेथड्स. मोतीलाल बनारसीदास; दिल्ली; 1991.
33. कार्दोना जी. रिसेंट रिसर्च इन पाणिनियन स्टडीज. मोतीलाल बनारसीदास; दिल्ली; 1999.
34. अल्लेन डब्ल्यू.एस. फोनेटिक्स इन एंशिंट इंडिया. लंदन: ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस; 1953.
35. व्हिटनी डब्ल्यू.डी. संस्कृत ग्रामर. कैम्ब्रिज: हार्वर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस; 1889.

36. स्टाल जेएफ, संपादक. अ रीडर ऑन द संस्कृत ग्रामैरियन्स. कैम्ब्रिज: एमआईटी प्रेस; 1972.
37. चॉम्स्की एन. कॅरेट इश्यूज इन लिंग्विस्टिक थ्योरी. द हेग: मूटन; 1964.
38. देशपांडे एमएम. संस्कृत एंड प्राकृत: सोशियोलिंग्विस्टिक इश्यूज. मोतीलाल बनारसीदास; दिल्ली; 1993.
39. सस्यूर एफ द. कोर्स इन जनरल लिंग्विस्टिक्स. बास्किन डब्ल्यू, अनुवादक. न्यूयॉर्क: मैकग्रॉ-हिल; 1959.
40. अय्यर केएआर. भर्तृहरि: अ स्टडी ऑफ द वाक्यपदीय इन इट्स फिलॉसॉफिकल पर्सपेक्टिव. डेक्कन कॉलेज पोस्टग्रेजुएट एंड रिसर्च इंस्टीट्यूट; पुणे; 1969.
41. भर्तृहरि. वाक्यपदीय १.१. अय्यर केएआर, संपादक. भांडारकर ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट; पुणे; 1966.
42. ब्रिम्स आर. नोइंग लैंग्वेज: पाणिनि, एआई एंड कंप्यूटेशनल लिंग्विस्टिक्स. एआई मैगजीन. 1985;6(1):32-39.
43. हुएट जी. संस्कृत सैंधी: अ राइटिंग सिस्टम एंड फोनोलॉजी. इनरिया रिसर्च रिपोर्ट; फ्रांस; 2005.
44. गोयल पी, हुएट जी. कंप्यूटेशनल सैंधी स्पिल्टिंग फॉर संस्कृत. प्रोसीडिंग्स ऑफ वर्कशॉप ऑन संस्कृत सिंटेक्स एंड डिस्कोर्स स्ट्रक्चर्स; 2013.
45. ग्रिम जे. ड्यूश ग्रामैटिक. गॉटिंगेन: डायटेरिचशे बुखहेइडलुंग; 1822.
46. मम्मट. काव्यप्रकाश (माधुर्यगुण-प्रकरण). चौखम्बा संस्कृत संस्थान; वाराणसी; 1998.
47. कालिदास. रघुवंश १.१. वल्लभदेव-टीका सहित। निर्णय सागर प्रेस; मुंबई; 1948.
48. स्टाल जेएफ. द साइंस ऑफ लैंग्वेज. रैंडल जी, संपादक. ब्लैकवेल कम्पैनिन टू हिंदुइज्म। ऑक्सफोर्ड: ब्लैकवेल पब्लिशिंग; 2003. पृ. 349-353.
49. स्कार्फ बीए. द फ़ॉरवर्ड-बैकवर्ड मेथड ऑफ रूल इंटरप्रिटेशन इन पाणिनि'ज ग्रामर. जर्नल ऑफ इंडियन फिलॉसफी. 1995;23(2):169-201.
50. मिश्र वीएन. पाणिनियन ग्रामर एंड मॉडर्न लिंग्विस्टिक्स: अ क्रिटिकल असेसमेंट. भारतीय भाषाविज्ञान पत्रिका. 2001;8(2):112-130.